फ़ोटो: संदीप सक्सेना

दोहरा बोझ: राजधानी का कठोर जीवन

कल्पना शर्मा

दिल्ली पुलिस ने शहरों में महिलाओं की सुरक्षा की पुरानी गाथा को एक नया मोड़ दे दिया है। महिलाओं की सुरक्षा विशेषतः पूर्वोत्तर भारत की महिलाओं की सुरक्षा का इरादा रखते हुए उन्होंने ने एक बुकलेट जारी की है। शीर्षक *"पूर्वोत्तर भारत से दिल्ली आए विद्यार्थियों/पर्यटकों के लिए सुरक्षा"* वाली इस बुकलेट में कुछ ऐसे नुस्खे दर्ज किये गये हैं जिनकी मदद से पूर्वोत्तर भारत से आने वाली महिलाएं दिल्ली की सड़कों पर सुरक्षित महसूस कर पाएंगी।

कुछ लोगों के लिए यह दिल्ली पुलिस द्वारा उठाया गया अनोखा कदम हो सकता है, पर दिल्ली वह शहर है जहां पूर्वोत्तर भारत की कई छात्राओं के साथ बलात्कार किया गया है। यह बुकलेट परोक्ष रूप से यह सुझाती है कि इस यौन हिंसा का कारण छात्राओं की पोशाक व पहनावा है। यानी एक बार फिर सुरक्षित रहने का दारोमदार औरतों के ऊपर आ पड़ा है।

यह बुकलेट जिनकी प्रस्तावना पूर्वोत्तर भारत के आईपीएस अफ़सर व दिल्ली पुलिस के डिप्टी कमीश्नर रॉबिन हिबु ने लिखी है अपनी भाषा और विषय वस्तु में अनूठी है। वेशभूषा के विषय को लेकर यह बुकलेट सुझाती है, "वैन इन रूमस दू एज़ रोमन डज़" (when in rooms do as Roman does) इसका क्या अर्थ है यह समझना कठिन है!!

सुरक्षा टिप्स के खण्ड में लिखा गया है: *पारदर्शी कपड़े न पहनें, अगर 'कम कपड़े' पहने हों तो सुनसान सड़क/बाई लेन का प्रयोग न करें, स्थानीय आबादी की भावनाओं का सम्मान करते हुए अपने कपड़ों का चयन करें।* इस बुकलेट में इस सच के लिए कोई जगह नहीं है कि स्थानीय जनसंख्या के पुरुषों द्वारा छेड़े जाने, यौन हिंसा, हमला या शारीरिक बदसलूकी सहने के लिए आपका औरत होनी ही काफी होता है और आपकी पोशाक का इस पर कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता। यानी यह बुकलेट बिल्कुल अनुपयुक्त और आपत्तिजनक है।

मैंने इस बुकलेट के कुछ अंश पढ़े हैं। इस बुकलेट को निकालने के पीछे छिपी अच्छी मंशा के बावजूद यह स्पष्ट होता है कि पूर्वोत्तर भारत की महिलाओं की संवेदनाओं के लिए यह अनुपयुक्त और आपत्तिजनक दस्तावेज़ है।

न सिर्फ़ इसमें दी गई सलाह बेकार और बेबुनियाद है परन्तु इसमें पूर्वोत्तर भारत से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह बताया गया है कि उन्हें दिल्ली आने पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। अगर बुकलेट का मकसद यह नहीं है तो आप बताएं कि हम इस हिदायत को कैसे जायज़ ठहराएं- *अखुनी, बैम्बू शूट व अन्य बदबूदार खाने की चीज़ों को पास-पड़ोस में हलचल पैदा किए बगैर पकाना चाहिए। बदबूदार व्यंजन* और *पड़ोस में हलचल* अगर ये वाक्य सांस्कृतिक नज़रिए से आपत्तिजनक न भी माने जाएं तो भी ये हास्यपद तो हैं ही।

इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र से आए काफी विद्यार्थियों को दिल्ली पुलिस का यह असंवेदनशील व बेबुनियाद प्रयास निरुत्तर कर गया है। संवेदनशीलता प्रशिक्षण की पुलिस को अधिक ज़रूरत है, हमला सहने वाली महिलाओं को नहीं। मणिपुर की एक महिला पत्रकार ने ई-मेल गोष्ठी में हमें बताया कि रात को साढ़े नौ बजे उसे एक भीड़ वाले इलाके में ऑटो में घसीटकर डाला गया। उस समय सड़क पर काफी लोग मौजूद थे और रोशनी भी काफी थी। बाद में जब उसने पुलिस में शिकायत की तो उसे सुनने को मिला- "यह पूर्वोत्तर क्षेत्र से है। ऑटो में खुद ही जाकर बैठ गई होगी।" और यह तब कहा गया जबकि सभी लोग जानते थे कि वह एक पत्रकार है।

यह बुकलेट एक और सवाल उठाती है- वह है हमारे शहरों को एक 'जेंडर लेंस' अर्थात लैंगिक नज़रिए से जांचने के महत्व का। अगर शहर औरतों के लिए सुरक्षित होगा तो बाकी सभी लोग भी वहां सुरक्षित महसूस करेंगे। मुंबई जैसे शहरों में किए गए "जेंडर ऑडिट" अथवा लैंगिक जांच ने कुछ ऐसे अहम सुझाव पेश किए हैं जिनका कार्यान्वयन हमारे शहरों को अधिक रहने योग्य बना सकता है।

हम मानते हैं कि सभी सार्वजनिक परिवहन सुरक्षित नहीं होते और सांस्कृतिक कारक इन्हें प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में सार्वजनिक परिवहन सेवा मौजूद है परन्तु इन्हें उपयोग करने के लिए महिलाओं को कवच धारण करना पड़ता है। इन बसों में आरक्षित महिला सीटों से भी कोई राहत नहीं मिलती और उन तक पहुंचना अपने आप में एक जद्दोजेहद होता है। और अगर आपको

ऐसे स्थल जो अनेक कार्यों के लिए उपयोग किये जाते हैं और जहां रोशनी की अच्छी व्यवस्था होती है वहां महिलाएं ज़्यादा सुरक्षित महसूस करती हैं क्योंकि वहां हर वक्त लोगों की मौजूदगी रहती है। इसी प्रकार वे शहर महिलाओं को अधिक सुरक्षित प्रतीत होते हैं जहां परिवहन साधन सुचारू रूप से मुहय्या होते हैं। दरअसल ये शहर पूरी जनता के लिए ही सुरक्षित होते हैं।

खिड़की के पास वाली सीट मिल जाती है तो आप कुछ समय के लिए 'सुरक्षित' महसूस कर सकती हैं। परन्तु अगर आपको गलियारे के साथ लगी "लेडीज़" सीट मिलती है तो आप पुरुष सहयात्रियों के अनचाहे टकराव, स्पर्श, चिपकने, सहलाने से बच नहीं सकतीं। जिस किसी ने भी दिल्ली की बसों में सफर किया है वह आपको बखूबी समझा सकता है कि अलग सीट होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। शायद पूरी महिलाओं से भरी बस हो तो काम चलेगा। पर मैंने ऐसे कई किस्से सुने हैं जहां दिन के समय 'केवल महिलाओं के लिए' बस में सवार अकेली औरत के साथ बस चालक व कडंक्टर ने यौन हिंसा की है।

यह सब कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि महिलाओं को सचेत नहीं रहना चाहिए। हम सभी जानते हैं कि सड़क पर क्या होता है। इसके लिए हमें तैयार रहना होगा। किसी मुगालते में रहने का कोई फायदा नहीं है। हम अपनी बेटियों को भी यही सिखाते हैं, पर हम अपनी बेटियों को आत्म-विश्वासी बनना भी सिखाएंगे। हम उन्हें यह पाठ पढ़ाएंगे कि वे अपना सम्मान करें। क्या हुआ अगर समाज उन्हें इंसानों को मिलने वाले सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। हम उन्हें अपने हक़ों के लिए हर हालत में संघर्ष करना सिखाएंगे।

पर पूर्वोत्तर क्षेत्र की लड़कियों के ऊपर दोहरा बोझ है - औरत होने का व दूसरे लोगों से अलग दिखने का। उनकी "रक्षा" करने के लिए पुलिस व दिल्ली प्रशासन को एक व्यापक जन-शिक्षण व संवेदनशीलता कार्यक्रम शुरू करने की ज़रूरत है जो पुलिस व आम जनता पर केंद्रित हों, न कि पूर्वोत्तर से आई लड़कियों पर।